जैन
पथप्रदर्शक
ए-4, बापूनगर, जयपुर - 302015 (राज.)
नैतिक एवं सामाजिक चेतना का अग्रदूत निष्पक्ष पाक्षिक

यदि पात्रता हो तो कुछ भी अलभ्य नहीं, पुरुषार्थियों की पिपासा तृप्त होती ही है; पर सब कुछ अन्तर की लगन पर निर्भर करता है।

ह्न आप कुछ भी कहो, पृष्ठ - 22

वर्ष : 27, अंक : 19 | **सम्पादक :** पण्डित रतनचन्द भारिल्ल | आजीवन शुल्क : 251 रुपये
जनवरी (प्रथम)2005 | **प्रबन्ध सम्पादक :** पं. संजीवकुमार गोधा व पं. जितेन्द्र वि. राठी | वार्षिक शुल्क : 25 रु., एक प्रति : 2/-

मध्यप्रदेश शासन द्वारा विद्यालय पाठ्यक्रम में जैनदर्शन विषय स्वीकृत

मध्यप्रदेश शासन द्वारा संस्कृत प्रचार-प्रसार के उद्देश्य से गठित म.प्र. संस्कृत शिक्षा बोर्ड ने संस्कृत पाठशालाओं के छठवीं से बारहवीं तक के विषयों में वैकल्पिक विषय के रूप में जैनदर्शन को शामिल किया है। इसके अन्तर्गत इष्टोपदेश, परीक्षामुख, रत्नकरण्डश्रावकाचार, तत्त्वार्थसूत्र, न्यायदीपिका, द्रव्यसंग्रह, आलापपद्धति जैसे आगम ग्रन्थों को शामिल किया गया है।

इस योजना के अन्तर्गत म.प्र. के जैन समाज के संगठित, शैक्षिक-सामाजिक संस्थायें अपने विद्यालयों में इस पाठ्यक्रम को लागू कर सकती है। जैनसमाज की पाठशालायें भी इस योजना का लाभ ले सकती हैं। इसके प्रचार-प्रसार हेतु राज्य सरकार द्वारा विकास गति की समीक्षा कर निश्चत आर्थिक अनुदान देने का भी प्रावधान रखा गया है।

इस योजना की विस्तृत जानकारी हेतु आप डॉ. राजेशजी शास्त्री, विदिशा से मोबाईल नं. 9827311795 पर अथवा पण्डित विरागजी शास्त्री, 702, फूटाताल, जबलपुर से फोन नं. 0761-5040152, 3090579 पर सम्पर्क कर सकते हैं।

आगामी सत्र से आचार्य कुन्दकुन्द सर्वोदय फाउन्डेशन जबलपुर द्वारा पाँचवीं, आठवीं, दसवीं कक्षाओं की प्राइवेट परीक्षाओं का संचालन करने की योजना है।

- विराग शास्त्री, जबलपुर

विभिन्न स्थानों पर धर्म प्रभावना

1. **महाराष्ट्र :** अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन शाखा, नागपुर द्वारा संचालित महाराष्ट्र प्रान्त तत्त्वप्रचार योजना के अन्तर्गत महाराष्ट्र प्रांत के अंजनी, हराल, सोलापुर, कुर्डुवाडी, अकलूज, मालशिरस, नातेपुते, सदाशिवनगर, अंथूर्णे, लासूर्णे, भिगवण आदि स्थानों पर श्री टोडरमल दि. जैन सिद्धान्त महाविद्यालय, जयपुर के स्नातक पण्डित सुनीलकुमारजी बेलोकर, सुलतानपुर द्वारा प्रवचन, प्रौढ़कक्षा, बालकक्षा, जिनेन्द्र भक्ति, विधान-पूजन एवं सांस्कृतिक कार्यक्रम कराये गये। कुछ स्थानों पर शांति विधान कराये गये तथा अनेक स्थानों पर नई पाठशालायें एवं स्वाध्याय सभायें प्रारंभ की गईं।

2. **ललितपुर (उ.प्र.) :** यहाँ सीमंधर जिनालय, घंटाघर में दिनांक 14 नवम्बर से 20 नवम्बर, 2004 तक डॉ. शुद्धात्मप्रभा टडैया, मुम्बई के प्रात: एवं रात्रि में 'जैनदर्शन की द्रव्य व्यवस्था' पर सारगर्भित प्रवचन हुये। दोपहर में नये मंदिर में 'प्रमाणज्ञान' विषय पर कक्षा का लाभ मिला।

सिद्धचक्र महामण्डल विधान सानन्द सम्पन्न

मन्दसौर (म.प्र.) : यहाँ श्री शान्तिनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर, गोल चौराहा में दिनांक 11 दिसम्बर से 19 दिसम्बर, 2004 तक श्री सुरेश गाँधी परिवार द्वारा श्री सिद्धचक्र मण्डल विधान का आयोजन किया गया।

कार्यक्रम में जयपुर से पधारे पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल ने प्रात: प्रवचनसार परमागम की 80 वीं गाथा के आधार पर सच्चे देव एवं उनकी पूजन-भक्ति का यथार्थ स्वरूप समझाया गया। रात्रि में आपके द्वारा सिद्धचक्र विधान की जयमाला पर मार्मिक प्रवचन हुये।

आपके प्रवचनों के पूर्व प्रात: एवं रात्रि में पण्डित पूनमचन्दजी छाबड़ा इन्दौर एवं पण्डित विरागजी शास्त्री जबलपुर के व्याख्यानों का लाभ उपस्थित जन समुदाय को मिला।

सायंकाल श्रीमती कमलाबाई भारिल्ल द्वारा छहढाला विषय पर प्रौढ़ कक्षा ली गई।

विधि-विधान के सम्पूर्ण कार्य पण्डित विरागजी शास्त्री के नेतृत्व में पण्डित सुनीलजी 'धवल' भोपाल एवं पण्डित अभिनयजी शास्त्री द्वारा सम्पन्न कराये गये।

नव वर्ष के अवसर पर सभी पाठकों, लेखकों, संवाद दाताओं को जैन पथप्रदर्शक परिवार की ओर से हार्दिक शुभकामनायें ! ●

साधना चैनल पर डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल के प्रवचन प्रतिदिन प्रात: 6:45 बजे अवश्य सुनें।
साधना चैनल आपके यहाँ न आता हो तो श्री पंकज जैन (साधना चैनल) से 09312506419 नम्बर पर सम्पर्क करें।

सम्पादकीय –

पञ्चास्तिकाय परिशीलन

21 ह्न रतनचन्द भारिल्ल

गाथा–३३

जह पउमरायरयणं खित्तं खीरे पभासयदि खीरं।
तह देही देहत्थो सदेहमेत्तं पभासयदि।।३३।।

(हरिगीत)

अलप या बहु क्षीर में ज्यों पद्ममणि आकृति गहे।
त्यों लघु–गुरु इस देह में, ये जीव आकृतियाँ धरें।।३३।।

पिछली गाथा ३१–३२ में यह कह आये हैं कि जीव के अगुरुलघुत्व स्वभाव के छोटे से छोटे अंश (अविभाग प्रतिच्छेद) करने पर स्वभाव से ही अनन्त अंश होते हैं। इसलिए जीव सदैव ऐसे (षट्गुण–हानि युक्त) अनन्त अंशों जितना है। और जीव के स्व–क्षेत्र के छोटे से छोटे अंश करने पर स्वभाव से ही सदैव असंख्य अंश होते हैं। वे जीव युक्त व अयुक्त के भेद से दो प्रकार के हैं, जिनका विवरण ३१–३२वीं गाथा में कर आये हैं।

अब इस ३३वीं गाथा में आचार्य कुन्दकुन्द देव कहते हैं कि ह्न जिसप्रकार दूध में डाला गया पद्मराग रत्न अपनी प्रभा से अभेदरूप एक–मेकरूप व्याप्त होता हुआ प्रतीत होता है, उसीप्रकार जीव देह में रहता हुआ स्वदेह प्रमाण प्रकाशित होता है, जीव अनादिकाल से कषाय द्वारा मलिन होने के कारण शरीर में रहता हुआ स्व–प्रदेशों द्वारा उस शरीर में व्याप्त (एकमेक) होता है।

इतना ही नहीं, और आगे भी आचार्य अमृतचन्द कहते हैं कि जिसप्रकार अग्नि के संयोग से उस दूध में उफान आने पर उस पराग रत्न के प्रभा समूह में उफान आता है अर्थात् वह परागरत्न भी विस्तार को प्राप्त होता है और दूध बैठ जाने पर प्रभा समूह भी बैठ जाता है; उसी प्रकार विशिष्ट आहारादि के वश उस शरीर में वृद्धि होने पर उस जीव के प्रदेश विस्तृत होते हैं और शरीर दुबला होने पर प्रदेश भी संकुचित हो जाते हैं।

पुनश्च, संसारी जीव को नाम–कर्म के निमित्त से जब जैसा छोटा–बड़ा शरीर प्राप्त होता है तब वैसा ही आत्मा के प्रदेशों का संकोच–विस्तार होता है।

इसी बात को जयसेनाचार्य कहते हैं कि जैसे दूध में उफान आने पर दूध बर्तन के ऊपर तक आ जाता तो दूध में पड़ा पद्मरागमणी की प्रभा भी उफान के साथ ऊपर तक आ जाती है, उसीप्रकार विशिष्ट आहार होने पर शरीर बढ़ने से जीव के प्रदेश भी विस्तृत हो जाते हैं और कम होने पर संकुचित हो जाते हैं। अथवा जैसे अधिक दूध में पड़ा वही प्रभा समूह अधिक दूध को व्याप्त करता है कम दूध में पड़ा हुआ कम दूध को व्याप्त करता है; उसीप्रकार यद्यपि जो शुद्ध आत्मा तीन लोक, तीन काल सम्बन्धी समस्त द्रव्य–गुण–पर्यायों को एक समय में प्रकाशित करने में समर्थ होता है; तथापि मिथ्यात्व रागादि से उपार्जित शरीर नामकर्म के उदय से उत्पन्न विस्तार–संकोच के अधीन होने से बड़े से बड़ा हजार योजन प्रमाण महामत्स्य और छोटे से छोटा (जघन्य) अवगाहना परिणत होता हुआ उत्सेधांगुल को असंख्य भाग प्रमाण लब्धि अपर्याप्तक सूक्ष्मनिगोद शरीर को व्याप्त करता है। तथा मध्यम अवगाहना से मध्यम शरीरों को प्राप्त करता है।

कवि हीराचन्दजी की काव्य भाषा में यही भाव इसप्रकार प्रगट हुआ है। वे लिखते हैं ह्न

(सवैया इकतीसा)

जैसैं पद्मरागमनि दूधकै समूह मध्य,
अपनै उद्योतकरि सारै दूध व्यापै है।
आगि–योग पाय दूध बढ़ै प्रभाखंध बढ़ै,
दूध घटै प्रभा घटै दोऊ एक मापै है।।
तैसैं छोटी बड़ी देह–धारी जीव करमतैं,
ताहीकै प्रमान तामैं आपरूप धापै है।
तातैं देहमान जीव निहचै सदैव कह्या,
देहकै विलायै सिद्ध देहमाप आपै है।।१८७।।

(दोहा)

लोक–असंख्य–प्रदेससम, निहचै जीव बखान।
देहमात्र विवहारकरि, दोऊ नय परमान।।१८८।।

गाथा ३३ पर प्रवचन करते हुए गुरुदेव श्री कहते हैं कि ह्न संसारी आत्मा देह प्रमाण है? संसारी जीव अनादिकाल से विकार से मलिन होता है और शरीर प्रमाण रहता है। यदि पर्याय की तरफ से देखें तो एक समय की पर्याय में मलिन हुआ है तथा पर्याय के प्रवाहरूप से देखें तो अनादि से मलिन हुआ है।

आत्मा अपने असंख्य प्रदेशों में रहकर शरीर प्रमाण संकोच–विस्तार स्वयं के कारण करता है। जो जीव वस्तु के ऐसे यथार्थ स्वतंत्र स्वरूप को नहीं जानता /मानता और तत्त्वज्ञान का विरोध करता है वह क्रम से निगोद दशा को प्राप्त होता है। तथा 'मैं पूर्ण ज्ञानानन्द हूँ', ऐसे आत्मा के भान सहित ज्ञानस्वभाव की उग्र आराधना करने वाले को केवलज्ञान लेकर सिद्धदशा प्रगट होती है। फिर वहाँ आत्मा के प्रदेश अन्तिम देर प्रमाण ही रहते हैं।

उपर्युक्त कथन से आचार्य देव यह कहना चाहते हैं कि आत्मा स्वभाव से तो अपने अनन्तगुण–पर्यायों सहित विद्यमान रहता हुआ असंख्य प्रदेशी है; परन्तु संसार अवस्था में स्वदेह प्रमाण घटता–बढ़ता है। यदि लब्धि अपर्याप्तक सूक्ष्मनिगोद की पर्याय में जन्म लेता है तो आत्मा के प्रदेश उसी शरीर के आकार में संकुचित हो जाते हैं और महामत्स्य के की पर्याय में जाता है तो वे आत्मप्रदेश महामत्स्य के आकार में बदल जाते हैं। यहाँ तक ही नहीं, जब केवली समुद्घात करता है तो तीनों लोक प्रमाण दण्डाकार, कपाट, प्रतर एवं लोकपूर्ण भी हो जाता है तथा सिद्धावस्था में अन्तिम देह प्रमाण सदाकाल रहता है।

गाथा–३४

सव्वत्थ अत्थि जीवो ण य एक्को एक्ककाय एक्कट्ठो।
अज्झवसाणविसिट्ठो चिट्ठदि मलिणो रजमलेहिं।।३४।।

(हरिगीत)

दूध–जल वत एक जिय–तन फिर भी कभी नहीं एक हों।
अध्यवसान विभाव से जिय मलिन हो जग में भ्रमें।।३४।।

पिछली ३३वीं गाथा में आत्मा को संसार अवस्था में प्रदेशत्व गुण के संकोच–विस्तार स्वभाव के कारण स्वदेह प्रमाण सिद्ध किया है। अब इस ३४ वीं गाथा में आचार्य कुन्दकुन्ददेव कहते हैं कि आत्मा देह के साथ यद्यपि दूध–पानी की भाँति एक–मेक होकर रहता है; तथापि एकरूप कभी नहीं होता। अपने विभावस्वभाव के कारण अध्यवसान विशिष्ट वर्तता हुआ कर्मरूप रज से मलिन होने से संसार में भ्रमण करता है।

टीकाकार आचार्य अमृतचन्द्र कहते हैं कि ह्न यहाँ जीव का देह से देहान्तर में अर्थात् एक शरीर से अन्य शरीर में अस्तित्व, देह से पृथकत्व तथा देहान्तर में गमन के कारणों का निर्देश किया है।

आत्मा संसार अवस्था में क्रमवर्ती अछिन्न (अटूट) शरीर प्रवाह में जिसप्रकार एक शरीर में वर्तता है; उसीप्रकार क्रम से अन्य शरीरों में भी वर्तता है। इसप्रकार उसका सर्वत्र अस्तित्व है और किसी एक शरीर में एक साथ रहने पर भी भिन्न स्वभाव के कारण उसके साथ एकरूप नहीं है। इसप्रकार उसके देह से पृथकपना है। तथा अनादिबंधरूप उपाधि से परिवर्तनपाने वाले विविध अध्यवसायों से विशिष्ट राग–द्वेष–मोहमय होने के कारण तथा उन अध्यवसानों के निमित्त से आस्रवित कर्मसमूह से मलिन होने के कारण संसार में भ्रमण करते हुए आत्मा को अन्य–अन्य शरीरों में प्रवेश होता है।

आचार्य जयसेन की टीका में से विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि वही जीव सर्वत्र है, चार्वाकमत की भाँति जीव नया उत्पन्न नहीं होता। हाँ, अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से एकमेक भी है।

यहाँ जो शरीर से भिन्न अनन्तज्ञानादि गुणमय शुद्धात्मा कहा है वह भी शुभाशुभ संकल्प–विकल्प के परिहारकाल में सर्वप्रकार से उपादेय है ह्न यह अभिप्राय है।

कवि हीरानन्द ने इस गाथा एवं टीकाओं के अभिप्राय को ग्रहण करते हुए अपनी काव्य की भाषा में निम्नांकित छन्दों में व्यक्त किया है ह्न

(दोहा)

जीव अस्ति सर्वत्र है, नहिं इक देहमिलाप।
अध्यवसान विसिष्ट है, रजमल–मलिन–प्रताप।।१८९।।

(सवैया इकतीसा)

संसारी अवस्था माहिं क्रमबरती सरीर,
तातैं जीव देहधारी नाना देह धरै है।
खीरनीर एक जैसैं जीव देह एक दिखै।
भिन्नता सुभाव तातैं एकता न करै है।
पूरब दरब–करम–उदैमैं नवा भाव,
तातैं दर्वकर्म नवा नानारूप वरै है।
ताव दर्वकर्मउदै देह नानारूप सधै,
तातैं देह भिन्न जानि ग्यानी जीव तरै है।।१९०।।

छन्द एकदम सरल भाषा में बने हैं, अतः अर्थ लिखने की आवश्यकता नहीं है।

इसी गाथा पर प्रवचन करते हुए गुरुदेव कहते हैं कि ह्न इस गाथा में कहा है कि शरीर धारण करने की परम्परा में वही का वही संसारी जीव एक शरीर से दूसरे शरीर में जाता है, नया जीव उत्पन्न नहीं होता। हाँ, संसार अवस्था में उसकी क्रमवर्ती अनेक पर्यायें होती हैं। एक समय में दो पर्यायें नहीं होती।

अपने–अपने स्वरूप से आत्मा और शरीर भिन्न–भिन्न ही रहते हैं। इसप्रकार भान करें तो स्वसन्मुख देखना रहता है।

विकारीपर्यायें स्वयं के कारण से विकारी हैं। और द्रव्य–गुण तो स्वभाव से त्रिकाल शुद्ध जीव की है ह्न इसप्रकार पर्याय और द्रव्य का ज्ञान होने पर प्रमाणज्ञान होता है अपने–अपने द्रव्यसन्मुख झुकने से सम्यग्दर्शन होता है।

आत्मा देह से भिन्न होने पर भी अलग–अलग शरीरों में जाने की चेष्टा क्यों करता है? इस प्रभू के उत्तर में कहते हैं कि ह्न ''शरीर के साथ एकत्व बुद्धि संसार का कारण है। शरीर हो तो धर्म होता है, मैं हूँ तो शरीर चलता है। शरीर, कर्म, स्त्री, परिवार मेरे हैं''ह्न इसप्रकार जीव अन्य पुद्गलों में और जीवों में 'मैं' पना मानकर मोह–राग–द्वेषरूप परिणाम करके ज्ञानावरणादि कर्म बाँधकर संसार में परिभ्रमण करता है।

विकार मेरी पर्याय में होता है और वह एकसमय मात्र का है। द्रव्य–गुण त्रिकाली शुद्ध हैं, उनमें विकार नहीं है। विकार पर्याय का धर्म है, त्रिकाली द्रव्य का धर्म नहीं है। इसप्रकार त्रिकाली शुद्धस्वभाव की अस्ति का स्वीकार करने से – गुणगुणी में एकत्वबुद्धि करने से पर से भेदज्ञान होता है और क्रमशः संसार का अभाव होता है।

जीव स्वयं जो ज्ञान करता है या इच्छा करता है, वह अपने में ही करता है। इच्छा एकसमय की है और ज्ञानस्वभाव त्रिकाली है और त्रिकाली स्वभाव में इच्छा नहीं है। इसप्रकार त्रिकाली का और एकसमय की पर्याय का यथार्थ भेद ज्ञान करे तो पर से भेदज्ञान होकर, विकार से भिन्न पड़कर त्रिकाली द्रव्य में स्थिर होवे। और ह्न वही वास्तविक धर्म है।

इसप्रकार इस गाथा में यह कहा है कि आत्मा और देह यद्यपि दूध–पानी की भाँति एक क्षेत्रावगाह ही हैं; तथापि भिन्न–भिन्न हैं। और अपने अज्ञानरूप अध्यवसान के कारण संसार में परिभ्रमण करते हैं।

अपने को जीतना ही सच्ची वीरता है, मोह–राग–द्वेष को जीतना ही अपने को जीतना है। दूसरों को तो इस जीव ने हजारों बार जीता है, पर अपने को नहीं जीता। दूसरों को जानने और जीतने में इस जीव ने अनन्त भव खोये हैं और दुःख ही पाया है। एक बार अपने को जान लेता और अपने को जीत लेता तो ज्ञानानन्दमय हो जाता। भव–भ्रमण से छूटकर भगवान बन जाता।

– ती. महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ, पृष्ठ–59

नव वर्ष के उपलक्ष में पाठकों को जैन पथप्रदर्शक की अनुपम भेंट –

125 वर्षीय कैलेण्डर सन् 2001 से 2125 तक

टेबल नं. 1 ह्न सन्

2001 भ	2026 न	2051 वी	2076 मी	2101 वी
2002 ग	2027 म	2052 र	2077 म	2102 भ
2003 वा	2028 य	2053 वा	2078 हा	2103 ग
2004 की	2029 भ	2054 न	2079 वी	2104 मी
2005 हा	2030 ग	2055 म	2080 र	2105 म
2006 वी	2031 वा	2056 य	2081 वा	2106 हा
2007 भ	2032 की	2057 भ	2082 न	2107 वी
2008 स्वा	2033 हा	2058 ग	2083 म	2108 र
2009 न	2034 वी	2059 वा	2084 य	2109 वा
2010 म	2035 भ	2060 की	2085 भ	2110 न
2011 हा	2036 स्वा	2061 हा	2086 ग	2111 म
2012 हो	2037 न	2062 वी	2087 वा	2112 य
2013 ग	2038 म	2063 भ	2088 की	2113 भ
2014 वा	2039 हा	2064 स्वा	2089 हा	2114 ग
2015 न	2040 हो	2065 न	2090 वी	2115 वा
2016 ज	2041 ग	2066 म	2091 भ	2116 की
2017 वी	2042 वा	2067 हा	2092 स्वा	2117 हा
2018 भ	2043 न	2068 हो	2093 न	2118 वी
2019 ग	2044 ज	2069 ग	2094 म	2119 भ
2020 मी	2045 वी	2070 वा	2095 हा	2120 स्वा
2021 म	2046 भ	2071 न	2096 हो	2121 न
2022 हा	2047 ग	2072 ज	2097 ग	2122 म
2023 वी	2048 मी	2073 वी	2098 वा	2123 हा
2024 र	2049 म	2074 भ	2099 न	2124 हो
2025 वा	2050 हा	2075 ग	2100 ज	2125 ग

टेबल नं. 2 ह्न एक वर्ष के 12 महिने

माह	जन.	फर.	मार्च	अप्रै.	मई	जून	जुला.	अग.	सित.	अक्टू.	नव.	दिस.
भ	ण	रि	रि	णं	मो	हं	णं	अ	ता	ण	रि	ता
ग	मो	हं	हं	ण	अ	ता	ण	रि	णं	मो	हं	णं
वा	अ	ता	ता	मो	रि	णं	मो	हं	ण	अ	ता	ण
न	रि	णं	णं	अ	हं	ण	अ	ता	मो	रि	णं	मो
म	हं	ण	ण	रि	ता	मो	रि	णं	अ	हं	ण	अ
हा	ता	मो	मो	हं	णं	अ	हं	ण	रि	ता	मो	रि
वी	णं	अ	अ	ता	ण	रि	ता	मो	हं	णं	अ	हं
र	ण	रि	हं	ण	अ	ता	ण	रि	णं	मो	हं	णं
स्वा	मो	हं	ता	मो	रि	णं	मो	हं	ण	अ	ता	ण
मी	अ	ता	णं	अ	हं	ण	अ	ता	मो	रि	णं	मो
की	रि	णं	ण	रि	ता	मो	रि	णं	अ	हं	ण	अ
ज	हं	ण	मो	हं	णं	अ	हं	ण	रि	ता	मो	रि
य	ता	मो	अ	ता	ण	रि	ता	मो	हं	णं	अ	हं
हो	णं	अ	रि	णं	मो	हं	णं	अ	ता	ण	रि	ता

टेबल नं. 3 – तारीख व वार

ण

S	M	T	W	T	F	S
	1	2	3	4	5	6
7	8	9	10	11	12	13
14	15	16	17	18	19	20
21	22	23	24	25	26	27
28	29	30	31			

मो

S	M	T	W	T	F	S
		1	2	3	4	5
6	7	8	9	10	11	12
13	14	15	16	17	18	19
20	21	22	23	24	25	26
27	28	29	30	31		

अ

S	M	T	W	T	F	S
			1	2	3	4
5	6	7	8	9	10	11
12	13	14	15	16	17	18
19	20	21	22	23	24	25
26	27	28	29	30	31	

रि

S	M	T	W	T	F	S
				1	2	3
4	5	6	7	8	9	10
11	12	13	14	15	16	17
18	19	20	21	22	23	24
25	26	27	28	29	30	31

हं

S	M	T	W	T	F	S
31					1	2
3	4	5	6	7	8	9
10	11	12	13	14	15	16
17	18	19	20	21	22	23
24	25	26	27	28	29	30

ता

S	M	T	W	T	F	S
30	31					1
2	3	4	5	6	7	8
9	10	11	12	13	14	15
16	17	18	19	20	21	22
23	24	25	26	27	28	29

णं

S	M	T	W	T	F	S
1	2	3	4	5	6	7
8	9	10	11	12	13	14
15	16	17	18	19	20	21
22	23	24	25	26	27	28
29	30	31				

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट एवं उससे संबंधित संस्थाओं द्वारा संचालित आध्यात्मिक गतिविधियों की जानकारी हेतु आज ही जैनपथ प्रदर्शक (पाक्षिक) के ग्राहक बनिये। **शुल्क :** आजीवन–251/– रुपये, वार्षिक –25/– रुपये।

कैलेण्डर देखने की विधि : ह्न टेबल नं. 1 से सन्, टेबल नं. 2 में पूरे साल के माह व टेबल नं. 3 में पूरे माह की तारीख–वार देखे जा सकते हैं। उदाहरण : ह्न वर्ष 2005 में 14 जनवरी को क्या वार रहेगा?

टेबल नं. १ में 2005 के आगे '**हा**' शब्द है। अब टेबल नं. 2 में 'हा' के सामने लाईन में पूरे वर्ष के लिये शब्द है। जनवरी माह के लिये शब्द '**ता**' है। अब टेबल नं. 3 में ता ह्न के नीचे जनवरी माह का कैलेण्डर है। उसे देखने पर पता चलता है कि 14 जनवरी को शुक्रवार होगा।

प्रस्तुति ह्न
नरेन्द्रकुमार भण्डारी
दलौदा, जिला–मन्दसौर
(म.प्र.) 458667

स्वस्ति पण्डिताचार्य भट्टारक श्री चारुकीर्तिजी, मूड़बिद्री के मंगल सान्निध्य में

जैन वांगमय के उद्भट विद्वान विशिष्ट मनीषा के धनी

पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल

का अभिनन्दन एवं अभिनन्दन ग्रन्थ

'रतनदीप'

का लोकार्पण समारोह

रविवार, दिनांक 16 जनवरी, 2005

कार्यक्रम की रूप रेखा

श्री टोडरमल दि. जैन सिद्धान्त महाविद्यालय के छात्रों का परिचय सम्मेलन

(स्थान : श्री टोडरमल स्मारक भवन)

प्रात: 8.30 से 9.15 प्रवचन (डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल)

9.30 से 11.30 विद्वत् संगोष्ठी

विषय : बीसवीं सदी की विद्वत् परम्परा में श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महा-विद्यालय का योगदान

दोप. 3.00 से 4.30 भूतपूर्व छात्रों द्वारा गोष्ठी

विषय : मेरी दृष्टि में बड़े दादा

पण्डितश्री रतनचन्दजी भारिल्ल का अभिनन्दन एवं अभिनन्दन ग्रन्थ 'रतनदीप' का लोकार्पण समारोह

तेल रहित बाती रहित धूमरहित उद्योत।
वेग-वायु से न बुझे, रतनदीप की जोत।।

समय : रात्रि 6.30 बजे से

स्थान : श्री महावीर दि. जैन सीनियर सैकेण्डरी स्कूल, महावीर मार्ग, सी-स्कीम, जयपुर।

आपसे उक्त समारोह में पधारने हेतु हार्दिक निवेदन है। आपकी सपरिवार उपस्थिति से समारोह की शोभा वृद्धिंगत होगी।

– भवदीय –

श्रीमंत सेठ डालचन्द जैन	मिलापचंद डंडिया	अशोक बड़जात्या	पद्मश्री सत्यव्रत शास्त्री	अखिल बंसल
स्वागताध्यक्ष	**महामंत्री**	**अध्यक्ष**	**प्रधान संपादक**	**संयोजक**

सम्पर्क-सूत्र : अखिल बंसल, 129, जादोननगर बी, स्टेशन रोड, दुर्गापुरा, जयपुर-18

प्रवचनसार का सार 19

ह्न डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

अब ८१ वीं गाथा की उत्थानिका में लिखते हैं कि ह्न

''**अथैवं प्राप्तचिन्तामणेरपि मे प्रमादो दस्युरिति जागर्ति।** ह्न अब, इसप्रकार मैंने चिन्तामणि रत्न प्राप्त कर लिया है; तथापि प्रमाद चोर विद्यमान है ह्न ऐसा विचार कर जागृत रहता है।''

मोक्ष के उपायरूप चिन्तामणिरत्न मिल गया है; लेकिन प्रमादरूप चोर चारों तरफ घूम रहे हैं; इसलिए मुझे जागना चाहिए।

पण्डित भूधरदासजी ने इसे पद्यरूप में इसप्रकार स्पष्ट किया है ह्न

मोहनींद के जोर, जगवासी घूमें सदा।
कर्मचोर चहूँ ओर, सरवस लूटैं सुध नहीं।।

पण्डित भूधरदासजी ने कर्मों को चोर बताया है और यहाँ आचार्यदेव प्रमाद को चोर कह रहे हैं।

आचार्य ने पहले यह कहा था कि 'उठो, जागो!' अब आचार्य 'जागते रहो।' ऐसा कह रहे हैं। वे कह रहे हैं कि जो तुमने प्राप्त कर लिया है, वह अनंतकाल तक टिकेगा नहीं; क्योंकि अभी इसे क्षायिक सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं हुआ है; इसलिए हे जीव ! जागते रहो।

गाथा मूलत: इसप्रकार है ह्न

जीवो ववगदमोहो, उवलद्धो तच्चमप्पणो सम्मं।
जहदि जदि रागदोसे, सो अप्पाणं लहदि सुद्धं।।८१।।

(हरिगीत)

जो जीव व्यपगत मोह हो ह्न निज आत्म उपलब्धि करें।
वे छोड़ दें यदि राग रुष शुद्धात्म उपलब्धि करें।।८१।।

जिसने मोह को दूर किया है और आत्मा के सम्यक् तत्त्व को प्राप्त किया है ह्न ऐसा जीव यदि राग-द्वेष को छोड़ता है तो वह शुद्ध आत्मा को प्राप्त करता है।

जिस जीव ने आत्मा का अनुभव कर लिया है, दर्शनमोह का नाश कर दिया है ह्न ऐसा जीव यदि राग-द्वेष को छोड़ देवें तो वह शुद्ध आत्मा को प्राप्त करता है।

यही विषय टीका में अत्यन्त सरलभाषा में स्पष्ट किया है ह्न

''इसप्रकार जिस उपाय का वर्णन किया है, उस उपाय के द्वारा मोह को दूर करके भी, सम्यक् आत्मतत्त्व को प्राप्त करके भी यदि जीव राग-द्वेष को निर्मूल करता है, तो शुद्ध आत्मा का अनुभव करता है। (किन्तु) यदि पुन:-पुन: उसका अनुसरण करता है, राग-द्वेषरूप परिणमन करता है, तो प्रमाद के अधीन होने से अनुभवरूप चिंतामणिरत्न के चुराये जाने से अन्तरंग में खेद को प्राप्त होता है। इसलिए मुझे राग-द्वेष को दूर करने के लिए अत्यन्त जागृत रहना चाहिए।''

आचार्यदेव यहाँ आत्मोपलब्धि के लिए एक महत्त्वपूर्ण संदेश देते हैं कि यदि इस जीव ने आत्मा में पुरुषार्थ कायम नहीं रखा तो यह औपशमिक या क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन एक सुनिश्चित काल में छूट जाएगा। इसलिए इस सम्यग्दर्शन को कायम रखने के लिए भी जागना जरूरी है और आगे बढ़ने के लिए अर्थात् चारित्रमोह को नष्ट करने के लिए भी जागना जरूरी है, जागते रहना जरूरी है।

पर-पदार्थों में उलझे रहना ही सोना है और अपने आत्मा में जमना-रमना, अपने आत्मा के ध्यान में ही मग्न रहना जागना है।

आठवाँ प्रवचन

प्रवचनसार परमागम के ज्ञानतत्त्वप्रज्ञापन महाधिकार के शुभपरिणाम अधिकार पर चर्चा चल रही है। इसमें ८०-८१वीं गाथा तक चर्चा हो चुकी है। अब आचार्य ८२वीं गाथा में घोषणा करते हैं कि ह्न

सव्वे वि य अरहंता तेण विधाणेण खविदकम्मंसा।
किच्चा तधोवदेसं णिव्वादा ते णमो तेसिं।।८२।।

(हरिगीत)

सर्व ही अरहंत ने विधि नष्ट कीने जिस विधी।
सबको बताई वही विधि हो नमन उनको सब विधी।।८२।।

सभी अरहन्त भगवान उसी विधि से कर्मांशों का क्षय करके तथा उसीप्रकार से उपदेश करके मोक्ष को प्राप्त हुए हैं, उन्हें नमस्कार हो।

अचानक नमस्काररूप गाथा यहाँ कैसे आई ? इसका उत्तर आचार्यदेव ने इस गाथा की उत्थानिका में दिया है। '**अब, भगवन्तों के द्वारा स्वयं अनुभव करके प्रगट किया हुआ यही एक नि:श्रेयस का पारमार्थिक-पन्थ है** ह्न इसप्रकार मति को व्यवस्थित करते हैं।'

अत: आचार्यदेव कहते हैं कि अब अधिक शोध-खोज के चक्कर में पड़ने की जरूरत नहीं है। इतना बताने के बाद भी यह जीव ऐसा विचार करता है कि क्या यह सत्य है, क्या यह जरूरी है ? इसप्रकार भ्रमित होता है तो वह अभी समझा ही नहीं है।

आजतक जिन्होंने कर्मों का नाश किया है, जो वर्तमान में कर रहे हैं और भविष्य में भी जो कर्मों का नाश करेंगे; उनके लिए यही एक रास्ता है।

तीनों काल यही एक उपाय है, था और रहेगा। इसलिए आचार्यदेव यहाँ मति को व्यवस्थित करते हैं अर्थात् इसके पश्चात् भी आगे और कोई रास्ता निकल आएगा ह्न इसप्रकार दिमाग को घुमाने की जरूरत नहीं है। इसे टीका में आचार्य ने उदाहरण देकर विशेष स्पष्ट किया है ह्न

''अतीतकाल में क्रमश: हुए समस्त तीर्थंकर भगवान प्रकारान्तर का असंभव होने से, जिसमें द्वैत संभव नहीं है; ऐसे इसी एकप्रकार से कर्मांशों का क्षय करके स्वयं अनुभव करके परमाप्तता के कारण भविष्यकाल में अथवा इस वर्तमान काल में अन्य मुमुक्षुओं को भी इसीप्रकार उपदेश देकर मोक्ष को प्राप्त हुए हैं; इसलिए निर्वाण का अन्य कोई मार्ग नहीं है ह्न ऐसा निश्चित होता है अथवा अधिक प्रलाप से बस होओ ! मेरी मति व्यवस्थित हो गई है। भगवन्तों को नमस्कार हो।''

इसलिए आचार्य ऐसा उपदेश देते हैं कि अब मति को व्यवस्थित करो, अधिक प्रलाप से क्या लाभ है ?

आचार्यदेव कह रहे हैं कि अब ये जो खोज की चंचलवृत्ति है, उससे

विराम लो।

जैसे ह्न कोई लड़का शादी करना चाहता है। तब वह पच्चीसों जगह अपने योग्य लड़कियाँ देखता है। जब उसका दिमाग एक जगह स्थिर हो जाता है, उसकी सगाई हो जाती है; तब भी यदि कोई कहता है कि अभी और दो-चार जगह देख लो, तो उसका क्या आशय हो सकता है? यह बात समाज में भी बर्दाश्त के काबिल नहीं होती। लड़की के घरवालों को यह पता चल जाए कि अभी भी इसने लड़की देखना जारी रखा है तो वे भी इस बात को बर्दाश्त नहीं कर सकते हैं। सगाई होने के पश्चात् लड़कियों को देखने में विराम लगना ही चाहिए।

यदि वह समाज में जाए और कहे कि मेरी सगाई हो गई है, फिर भी चार जगह लड़कियाँ देखने गए। सगाई हो गई फिर भी आपने ऐसा क्यों किया ? यदि उससे ऐसा पूछते हैं और वह कहता है कि लड़की तो आपकी जैसी सुन्दर हिन्दुस्तान में कहीं नहीं है। इसलिए कहीं अन्यत्र रिश्ता होने का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता। इसलिए अन्यत्र देखने से आपको क्या फर्क पड़ता है ?

भाईसाहब ! यहाँ लड़की सुंदर है या नहीं है और दूसरी जगह उसका रिश्ता होगा कि नहीं होगा ? यह बात नहीं है। तुम्हारे मन में जो कचास है, बेईमानी है; वह यहाँ प्रगट हो गई है।

क्या लड़की के बाप को इतना धैर्य हो सकता है ? होना भी नहीं चाहिए।

ऐसे ही यद्यपि इस जीव को मुक्ति का मार्ग ख्याल में आया है; फिर भी भटकने की वृत्ति अभी है। इससे यही तात्पर्य है कि इसका मर्म इसे ख्याल में नहीं आया है। इसकी गहराई इस जीव को ख्याल में नहीं आई है।

ऐसे ही यदि तुम कहो कि तुम्हारा मोक्षमार्ग यदि सच्चा है तो और दस जगह देख लेने दो। इससे क्या फर्क पड़ता है; लौटकर तो यहाँ ही आना है। आचार्य कहते हैं कि हमें तो कोई फर्क नहीं पड़ता, पर तेरी अनास्था तो प्रगट हो ही गई।

गुरुदेव ऐसे व्यक्ति के लिए ऐसा फरमाते हैं कि ह्न अभी भी यह मर रहा है। इसे आचार्य कुन्दकुन्ददेव का समयसार प्राप्त है एवं अमृतचन्द्र आचार्य की आत्मख्याति मिल गई है। इसे सब मर्म ख्याल में आ गया है। इसे पूरा पक्का-दृढ़ विश्वास है कि गुरुदेव जो कहते हैं, वह सच्ची बात है। फिर भी इसका यह विकल्प बना रहता है कि अन्यत्र भी कहीं देख लूँ, कहीं नई बात मिल जाएगी। भाई ! कहीं भी जाओगे इससे पृथक् कोई सत्य मिलेगा ही नहीं, अंत में यहीं आना पड़ेगा।

आचार्य यहाँ कह रहे हैं कि इसके भटकाव से यही स्पष्ट होता है कि इसके अंतर में अभी कचास है, विकल्प शेष हैं। इस जीव के जो भटकने की वृत्ति है, इसकी एकनिष्ठता में जो शंका उपस्थित हुई है, उससे आचार्यदेव परिचित हैं; इसलिए कहते हैं कि अधिक प्रलाप से क्या फायदा ?

यह कहता है कि मजा नहीं आया, थोड़ा और समझाओ। इसे ही ध्यान में रखकर आचार्य कहते हैं कि अधिक प्रलाप से क्या फायदा ?

इस कथन का आशय मात्र इतना ही है कि समझ में आने का लक्षण एकमात्र तृप्ति है। इस जीव को और अधिक सुनने का, अन्यत्र जाने का, दुनिया में भटकने का जो विकल्प है; वह अतृप्ति का ही सूचक है।

एकमात्र यही रास्ता है, अनन्त जीव इसी रास्ते से मोक्ष गए हैं। अभी वर्तमान में जो जीव मोक्ष जा रहे हैं, छ: माह आठ समय में ६०८ जीव मोक्ष जाएँगे; वे किसी अन्य उपाय से मोक्ष में जाएँगे; यह संभव ही नहीं है।

देशनालब्धि के माध्यम से तत्त्व को समझकर, फिर प्रायोग्यलब्धि में होते हुए करणलब्धिपूर्वक आत्मानुभव करके, आत्मा में लीन होकर, चारित्र धारण करके ही यह जीव मोक्ष जाता है ह्न यही मार्ग है, अन्य कोई मार्ग नहीं है।

दब्बादिएसु मूढो, भावो जीवस्स हवदि मोहो त्ति।
खुब्भदि तेणुच्छण्णो, पप्पा रागं व दोसं वा।।८३।।

(हरिगीत)

द्रव्यादि में जो मूढ़ता वह मोह उसके जोर से।
कर रागरुष परद्रव्य में जिय क्षुब्ध हो चहुंओर से।।८३।।

जीव के द्रव्यादि सम्बन्धी मूढ भाव (द्रव्यगुणपर्याय संबंधी जो मूढतारूप परिणाम) वह मोह है, उससे आच्छादित वर्तता हुआ जीव राग अथवा द्वेष को प्राप्त करके क्षुब्ध होता है।

८३ और ८४वीं गाथा की टीका में अमृतचन्द्राचार्य ने इसे उदाहरण के माध्यम से स्पष्ट किया है ह्न

''धतूरा खाये हुए मनुष्य की भाँति द्रव्य-गुण-पर्याय संबंधी पूर्ववर्णित तत्त्व-अप्रतिपत्तिलक्षण जो जीव का मूढ़भाव है, वह मोह है।

आत्मा का स्वरूप उक्त मोह (मिथ्यात्व) से आच्छादित होने से यह आत्मा परद्रव्य को स्वद्रव्यरूप से, परगुण को स्वगुणरूप से और परपर्यायों को स्वपर्यायरूप से समझकर-स्वीकार कर अतिरूढ़ दृढ़तर संस्कार के कारण परद्रव्य को ही सदा ग्रहण करता हुआ, दग्धइन्द्रियों की रुचि के वश से अद्वैत में भी द्वैत प्रवृत्ति करता हुआ, रुचिकर-अरुचिकर विषयों में राग-द्वेष करके अति प्रचुर जलसमूह के वेग से प्रहार को प्राप्त पुल की भाँति दो भागों में खण्डित होता हुआ अत्यन्त क्षोभ को प्राप्त होता है।

इसप्रकार मोह, राग और द्वेष ह्न इन भेदों के कारण मोह तीन प्रकार का है।

इसप्रकार तत्त्व-अप्रतिपत्तिरूप वस्तुस्वरूप के अज्ञान के कारण मोह-राग-द्वेषरूप परिणमित होते हुए इस जीव को ह्न घास के ढेर से ढंके हुए गड्ढे को प्राप्त होनेवाले हाथी की भाँति, हथिनीरूप कुट्टनी के शरीर में आसक्त हाथी की भाँति और विरोधी हाथी को देखकर उत्तेजित होकर उसकी ओर दौड़ते हुए हाथी की भाँति ह्न विविधप्रकार का बंध होता है; इसलिए मुमुक्षुजीव को अनिष्ट कार्य करनेवाले इस मोह, राग और द्वेष का यथावत् निर्मूल नाश हो ह्न इसप्रकार क्षय करना चाहिए।''

आचार्य ने यहाँ हाथी के तीन उदाहरण देकर मोह, राग और द्वेष को स्पष्ट किया है।

इन उदाहरणों के अध्ययन से ऐसा लगता है कि आचार्य भयंकर जंगल में रहते थे। जहाँ हाथियों के झुण्ड घूमा करते थे ह्न ऐसे गहन वन में रहते थे। **(क्रमश:)**

रजिस्ट्रेशन आर. एन. आई. 31109/77

रविवारीय गोष्ठियों का आयोजन

जयपुर : यहाँ श्री टोडरमल दिग. जैन सिद्धान्त महाविद्यालय द्वारा आयोजित रविवारीय गोष्ठियों की शृंखला में दिनांक 12 दिसम्बर, 2004 को **जैनाभासी मिथ्यादृष्टि** विषय पर गोष्ठी का आयोजन किया गया; सभा की अध्यक्षता डॉ. प्रेमचन्दजी रांवका जयपुर ने की। श्रेष्ठ वक्ता के रूप में आशीष जैन जबेरा एवं रविन्द्र काले को पुरस्कृत किया गया। सभा का संचालन शीतल आलमान ने तथा संयोजन विक्रान्त पाटनी ने किया।

इसी शृंखला में दिनांक 26 दिसम्बर, 2004 को **जैन श्रमण का स्वरूप** विषय पर गोष्ठी का आयोजन किया गया; जिसकी अध्यक्षता डॉ. पी.सी. जैन, जैन अनुशीलन केन्द्र (राजस्थान यूनिवर्सिटी) ने की। श्रेष्ठ वक्ता के रूप में नितिन जैन खडैरी एवं रविन्द्र महाजन चुने गये। सभा का संचालन अनन्तवीर जैन, फिरोजाबाद ने तथा संयोजन विक्रन्त पाटनी, झालरापाटन ने किया।

परिचय पुस्तिका का प्रकाशन

सामाजिक संस्था आचार्य कुन्दकुन्द सर्वोदय फाउन्डेशन (पंजी.) जबलपुर द्वारा मुमुक्षु समाज के विवाह योग्य युवक-युवति परिचय पुस्तिका का प्रकाशन किया जा रहा है। इसमें मुमुक्षु समाज के विवाह योग्य प्रत्याशियों का परिचय फोटो सहित प्रकाशित किया जायेगा। इस स्मारिका को विशेष रूप से प्रत्येक राज्य एवं उसके अन्तर्गत आनेवाले नगरों के क्रम से वर्गीक्रत कर प्रकाशित किया जायेगा।

परिचय पुस्तिका में आवेदन देने की अंतिम तिथि 25 जनवरी, 2005 है। आवेदन फार्म नि:शुल्क प्राप्त करने के लिये पाँच रुपये टिकिट लगा एवं स्वयं का पता लिखा हुआ लिफाफा संस्था के कार्यालय 'सर्वोदय स्मारिका, 702, फूटाताल, जबलपुर-482002 (म.प्र.)' पर प्रेषित करें।

नववर्ष

बाहर में खुले अखियाँ, दीखे रवि प्रभा जब।
अन्तर में खुले ज्ञायक, दीखे स्वयं प्रभा तब।।
सोते गुजार दी, हमनें हजारों रतियाँ।
पर की प्रगाढ़ निंदा, में घूमी चारों गतियाँ।।
नूतन प्रभात आया, नव वर्ष झिलमिलाया।
मिथ्यात्व की लगन तज, समकित का रंग भाया।।
अब तक जुड़े थे हम सब, पर की रसाकसी में।
अब आ जुड़ेंगे हम उस, निज नाथ की निधि में।।
आओ उठायें बीड़ा, भव-भव नहीं है खोना।
अब एक पल भी होना, समकित बिना न होना।।
पर से ममत्त्व कर कर, निज नाथ को सुलाया।
नव वर्ष है जगाता, वैराग्य लोरी लाया।।

ह्न प्रदीप शास्त्री, धामपुर

अध्यात्म उपदेश ही अत्यन्त उपयोगी

बात लगभग 250 वर्ष पूर्व की है, जयपुरनगर में उससमय भी प्रतिदिन शास्त्रसभा चलती थी। गृहस्थ होकर भी जैन साहित्य के क्षेत्र में आचार्य के समान कार्य करनेवाले आचार्यकल्प पण्डित टोडरमलजी उस सभा में प्रवचन किया करते थे। सभा में लगभग हजार-बारह सौ साधर्मियों की उपस्थिति नियमित रहती थी, अनेक बड़े-बड़े विद्वान भी प्रवचन सुनने आते थे। टोडरमलजी के सुपुत्र गुमानीरामजी भी तत्त्वरसिक महान विद्वान थे।

एक दिन सभा में गुमानीरामजी पं. टोडरमलजी से बोले ह्न 'द्रव्यानुयोग के पठन-पाठन से लोग व्रत-संयमादि व्यवहारधर्म छोड़कर स्वच्छन्दी हो जाते हैं; इसलिये द्रव्यानुयोग का स्वाध्याय गृहस्थों को नहीं करना चाहिये।'

टोडरमलजी ने शान्त और गम्भीर होकर जवाब दिया कि ह्न 'यदि गधा मिश्री खाने से मर जाये तो मनुष्य को तो मिश्री खाना नहीं छोड़ना चाहिये; उसीप्रकार कोई विषयाभिलाषीजीव अध्यात्मग्रन्थ का स्वाध्याय कर स्वच्छन्द हो जाये तो विवेकी जनों को तो द्रव्यानुयोग का स्वाध्याय नहीं छोड़ना चाहिये। यदि हमें ऐसा लगे कि एकाध गृहस्थ स्वच्छन्दी हो रहा हो तो उसे सावधान अवश्य करना चाहिये। वैसे भी विवेकी पुरुषों को पंचेन्द्रिय के विषय-भोगों की रुचि होती ही नहीं है। वे तो जल में कमल की भाँति निर्लिप्त रहते हैं।'

एक अन्य विद्वान दीवान रतनचन्दजी ने कहा ह्न 'पण्डितजी अध्यात्म का उपदेश तो बहुत कठिन है, सामान्य लोगों को समझ में नहीं आता; वह तो केवल मुनियों के लिये ही कार्यकारी है। गृहस्थों को तो मात्र व्रत नियमों का ही उपदेश दिया जाना चाहिये।'

पण्डित टोडरमलजी ने कहा ह्न 'जैनधर्म में तो ऐसा नियम है कि पहले सम्यग्दर्शन होता है, उसके बाद व्रतादि होते हैं। सम्यग्दर्शन का कारण स्व-पर का श्रद्धान है, वह स्व-पर श्रद्धान द्रव्यानुयोग के अभ्यास से ही हो सकता है; इसलिये गृहस्थों को सम्यग्दर्शन प्राप्त करने के लिये द्रव्यानुयोग का स्वाध्याय या अध्यात्म उपदेश ही अत्यन्त उपयोगी है।'

समाधान सुनकर उपस्थित सभी श्रोताओं के चेहरे खिल गये।

– प्रस्तुति, श्रुतेश सातपुते

जैनपथप्रदर्शक (पाक्षिक) जनवरी (प्रथम) 2005
J. P.C. 3779/02/2003-05

प्रति,

सम्पादक : **पण्डित रतनचन्द भारिल्ल** शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, एम.ए., बी.एड.
प्रबन्ध सम्पादक : **पं. संजीवकुमार गोधा,** डबल एम.ए. जैनविद्या व तुलनात्मक धर्मदर्शन तथा इतिहास एवं **पं. जितेन्द्र वि.राठी,** शास्त्री
प्रकाशक एवं मुद्रक : **ब्र. यशपाल जैन** द्वारा जैनपथप्रदर्शक समिति के लिए जयपुर प्रिण्टर्स प्रा.लि., एम. आई. रोड, जयपुर से मुद्रित तथा त्रिमूर्ति कम्प्यूटर्स, ए-4, बापूनगर, जयपुर से प्रकाशित।

यदि न पहुँचे तो कृपया निम्न पते पर भेजें -
ए- 4 बापूनगर, जयपुर - 302015 (राज.)
फोन : (0141) 2705581, 2707458
तार : त्रिमूर्ति, जयपुर **फैक्स :** 2704127